श्रीमद्भगवत् गीता में आरोग्य उक्ति

डॉ० इन्दिरा जुगरान
एसो०प्रोफेसर–संस्कृत
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ऋषिकेश

मानव जीवन का लक्ष्य है, पुरूषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति। धर्म, अर्थ काम और मोक्ष रूपी चतुर्विध पुरूषार्थ की प्राप्ति में आरोग्य की महत्वपूर्ण भूमिका है।

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।

(च0सू0 1/15)

हमारे पंच तत्व द्वारा निर्मित शरीर में मन का स्थान प्रधान है शरीर का गौण, क्योंकि मन चेतन है, शरीर जड़। गीता में भी चैतन्य को ही प्रधान माना है। मानसिक स्वास्थ्य पर ही अधिक सीमा तक शारीरिक स्वास्थ्य निर्भर है।

तन रोग, मानसिक रोग और भवरोग से मुक्त रहना सच्चा आरोग्य युक्त होना है। भगवान श्रीकृ'ण ने गीता में युक्त के ग्रहण और 'अति' के त्याग द्वारा तनरोग से आन्तरिक विकारों के द्वारा मनो रोग से और भगवद् शरणागत होकर भव–रोग से छुटकारा पाने की युक्ति बतायी है।

निरोगिता जड़–चेतन सबके लिए अनिवार्य वस्तु है। स्वस्थ मन और निरोग शरीर वाला व्यक्ति ही पुरूषार्थ चतुष्टय को प्राप्त कर सकता है। शरीर की अपेक्षा मन का निरोग रहना अत्याव"यक है, क्योंकि शरीर की व्याधि असाध्य होकर अन्तिम स्थिति में पहुँचने पर इस वर्तमान स्थूल शरीर का अन्त हो जाता है :–

भारीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।

(गीता 2/22)

अर्थात् जीवात्मा पुरोन शरीरों को त्यागकर दूसरे नवीन शरीरों को धारण करता है। पुराने शरीर से जीवात्मा के निकल जाने पर इस स्थूल शरीर से तो छुटकारा मिल जताा है। परन्तु मन के त्याधिग्रस्त रहने पर वह विव"ा होकर इस संसार में बार–बार जन्म लेता और मरता है। वह अपने "ाुभ–अ"ाुभ कर्मों का फल सुख दुख भोगता है। इसलिए भगवान श्रीकृ'ण ने निरोग–ज्वर रहित मन से संताप रहित होकर कर्म करने को कहा है :–

युध्यस्य विगतज्वरः

(गीता 3/30)

आशा ममता संताप आसक्ति शोक मोह लोभ अहंकार असहिष्णुता अधैर्य और मद आदि मानसिक विकार हैं। इन मानसिक विकार को भगवान श्रीकृ'ण ने ज्वर कहा है। जो व्यक्ति आ"ाा रहित संतापरहित और ममतारहित होता है और जो काम और कोध्र से उत्पन्न हुये वेग को सहन करने में समर्थ है वहीं सुखी रह सकता है वहीं योगी हो सकता है :–

भाक्नोतिहैव यः सोढुं प्राक्"ारीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः।।

(गीता 5/23)

जब मनुष्य सम्पूर्ण इन्द्रियों मन और बुद्धि को व"ा में करके योग युक्त हो जाता है। त बवह संसार सागर से तर जाता है। इस प्रकार वह अपने को सम्पूर्ण दुखों से छुड़ा लेता है। अतः स्वस्थ रहने वाला ही मानव का मित्र है। इसके विपरीत जो जीव अपनी इन्द्रियों को अपने व"ा में करके इन व्याधियों से युक्त रहता है। ऐसा मन ही मानव का शत्रु है :–

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु भात्रुत्वे वर्तोतामैव भात्रुवत्।।

(गीता 6/6)

ऐसे मित्र रूप मन का सहारा लेकर परमपद की प्राप्ति के लिए प्रयत्न"ाील रहना ही मनुष्य मात्र का कर्तव्य है :–

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरूशं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।।

(गीता 15/4)

उस आसक्ति आदि से रहित होने पर उस परमपद को ढूँढना चाहिए जिसमें पहुँचकर मनुष्य इस दुस्तर भवसागर को तर जाता है। परमपद प्राप्त होने पर मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता और जीव सदा के लिए संसार से मुक्त हो जाता है।

क्षणिक सुख एवं दीर्घ दुःख से होने वाली मन की हर्ष और विषाद की द"ाा बने रहना ही मानसिक त्याधि है। इस व्याधि को मिटाने की औषधि है– धैर्य और श्रद्धा को

अपनाते हुए संसार एवं विषयों की अनित्यता तथा दुःख रूपता को समझते हुए भगवान की शरण में जाना।

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।।

(गीता 9/33)

व्यक्ति को विषय भोगों का चिन्तन त्यागकर अपनी इन्द्रियों को विषयों से हटाकर काम क्रोध भय को त्यागकर भगवान को सर्वलोक महे"वर, सम्पूर्ण यज्ञों एवं तपों का भोक्ता तथा सम्पूर्ण प्राणियों का स्वार्थरहित मित्र जानकर मन को उन्हीं की ओर लगाने का प्रयास करते रहना चाहिए –

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोक महे"वरम्।
सुहृदयं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां भाान्तिमृच्छति।।

(गीता 5/29)

जब हमारा मन पवित्र भाव से विषयों का यथा योग्य सीमित मात्रा में सेवन करता हुआ परमात्मा की ओर झुकता जाएगा उतनी उतनी मन में शान्ति आती जाएगी। अन्तः करण की प्रसन्नता से सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है :–

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।

(गीता 2/65)

और दुःखों का अभाव होना ही आरोग्य की सच्ची प्राप्ति है।

जितेन्द्रिय मनुष्य सम्पूर्ण दुःखो से मुक्त होकर सदा प्रसन्नचित रहता है अ"ाान्त को सुख नहीं मिलता :– **अ"ाान्तस्य कुतः सुखम्। (गीता 2/66)** तात्पर्य यह है कि जो अं"ाान्त है वह दुखी है वह कभी सुखी नहीं हो सकता। जो प्र"ाान्त है वह सुखी है। इस तरह की आरोग्यता प्राप्त करना ही मानव जीवन का पुरूषार्थ है।

इस आन्तरिक (मानसिक) आरोग्य की प्राप्ति के लिए स्थूल शरीर का स्वस्थ रहना जरूरी है। शरीर वह रथ है जिसमें बैठकर जीवन की यात्रा करनी होती है। अतः मन की निर्मलता एवं बुद्धि की शुद्धता का साधन शरीर से प्रारम्भ होता है। इसलिए कहा है :–

भारीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।

शरीरिक स्वास्थ्य के लिए जीवन संयमी होना चाहिए। कोई असंयमी व्यक्ति नीरोगतारूपी सिद्धि नहीं पा सकता :–

नात्य"नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तम"नतः।
न चाति स्वप्न"ीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।।
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेश्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

(गीता 6/16–17)

योग में अति का त्याग करना होता है जो भूख के अनुसार भोजन करता है भूख से अधिक नहीं खाता, हल्का और सुपाच्य सात्विक भोजन करता है। वह योगाभ्यास के योग्य है। जो बहुत ही कम खाता है वह अपने शरीर को हानि पहुँचाता है। अतः वह योगी नहीं बन सकता, क्योंकि उसे साधना के लिए आव"यक ऊर्जा प्राप्त नहीं होती वह निर्बल और आलस्य ग्रस्त रहता है। इसी प्रकार जो बहुत अधिक सोता है या बहुत अधिक जागता है। उसके मन और शरीर प्रसन्न और निरोगी नहीं होते। अतः जो उचित मात्रा में जागता है। शयन करता है भोजन करता है वही निरोगी रहता है।

आहार का अर्थ है – भोजन चलना या टहलना विहार है। दुःखों का ना"ा करने वाला यह योग तो यथायोग्य आहार–विहार करने वालों का, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने वाले का और यथायोग्य शयन और यथायोग्य जागरण करने वाले का ही सिद्ध होता है। आहार की शुद्धि होने पर मन की शुद्धि होती है –

'आहार भ्ाुद्धौ सत्व"ुद्धिः'

(छान्दोग्य0 7/26/2)

आहार के विषय में भगवान श्रीकृ'ण ने अ"नतः और आहार ये दो शब्द कहे हैं– आहार ग्रहण करने से मन–प्राण और शरीर चल पाते हैं। सम्पर्ण जगत त्रिगुणात्मक होने से आहार को उपयोग में लाने वाले भी तीन प्रकार के होते हैं–

आयुः सत्त्वबलारोग्य सुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सत्त्विकप्रियाः।।

(गीता 17/8)

आयु, सत्त्व, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले रसयुक्त, चिकने स्थिर रहने वाले तथा मन को प्रिय लगने वाले आहार सात्त्विक पुरूष को प्रिय होते हैं। सात्त्विक आहार से मनुष्य की आयु बुद्धि, बल, सुख और प्रसन्नता बढ़ती है। शरीर निरोग रहता है मन शान्त और प्रसन्न रहता है और अन्तः करण स्वच्छ होता है। सात्विक आहार से मनुष्य के शरीर में उत्साह और हल्कापन होता है। सात्विक पुरूष निरोग होने से दीर्घजीवी होते हैं। सात्त्विक खाद्य पदार्थ सुपाच्य होते हैं।

अब श्रीभगवान राजसी भोजन के विषय में कहते हैं –

कटूवम्ललवणात्युश्णतीक्ष्ण रूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येश्टा दुःख"ोकामयप्रदाः।।

(गीता 17/9)

अति कड़वे अति खट्टे, अति नमकीन, अति गरम, अति तीखे, अतिरूक्ष और अति दाह कारक आहार राजसी मनुष्य को प्रिय होते हैं। राजसी भोजन दुःख शोक और रोग उत्पन्न करते हैं।

अब श्री भगवान तामसी भोजन के विषय में कहते हैं :–

यातयामं गतरसं पूति पर्युशितं च यत्।
उच्छिश्टमप चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्।।

जो भोजन अधपका, नीरस, दुर्गन्धयुक्त वासी जूठा और अपवित्र है वह भोजन तामसी मनुष्य को प्रिय होता है।

इस प्रकार गीतोक्त आहार–विहार आदि के सेवन से मानसिक कटुता का त्यागकर भगवत् शरण अवलम्ब लेकर चला जाय तो तन रोग, मनोराग, और भवरोग सदा के लिए समाप्त हो जाएंगे तथा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आरोग्य सदा बना रहेगा।